International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 3; Issue 3; May 2018; Page No. 81-84

मैत्रेयी पुष्पा का नारी विषयक चिन्तन

नीरज रानी
शोधार्थी, पीएच॰डी॰ (हिन्दी), सिंघानिया विश्वविद्यालय, झुंझनु, राजस्थान, भारत।

प्रस्तावना

नारी समस्त मानवीय सौन्दर्य एवं चेतना की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति है, साथ ही सृष्टि का मूल भी। साहित्य की प्रत्येक विधा में नारी हृदय की अनुरक्ति एवं जीवन प्रदायिनी ऊष्मा सक्रिय रही है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सृष्टि एवं सर्जन में नारी की महत्त्वपूर्ण भूमिका को रेखांकित करते हुए कहा है कि, "पुरुष स्वभावतः निःसंग व तटस्थ होता है, नारी ही उसमें आसक्ति उत्पन्न कर उसे नव–निर्माण के प्रति उन्मुख करती है। पुरुष अपनी प्रकृति के कारण द्वन्द्वरहित हो सकता है लेकिन नारी अतिशय भावुकता के कारण सदैव द्वन्द्वोन्मुखी रहती है। इसलिए पुरुष मुक्त है और नारी बद्ध है।"[1] यदि प्रसाद नारी को केवल श्रद्धा स्वरूप मानते हैं[2] तो गुप्ता जी के लिए वह आँचल में दूध और आँखों में पानी लिए त्याग की साकार प्रतिमा है।[3] महादेवी वर्मा का कथन है कि "नारी का मानसिक विकास पुरुष के मानसिक विकास से अधिक द्रुतगति से होता है। उसका स्वभाव कोमल और प्रेम, घृणा आदि भाव अधिक तीव्र और स्थायी होते हैं। इन दोनों प्रकृतियों में उतना ही अन्तर है जितना विद्युत और झड़ी में। एक से शक्ति उत्पन्न की जाती है किन्तु प्यास नहीं बुझाई जा सकती दूसरी से शान्ति मिलती है परन्तु पशुबल की उत्पत्ति सम्भव नहीं।"[4]

नारी ने मानव जीवन के सभी क्षेत्रों को अपनी दया, माया, ममता, मधुरिमा, अगाध विश्वास और समर्पण से अभिषिक्त किया है। इतिहास के किसी काल खण्ड में यदि उसने पुरुष की कोमल भावनाओं को उभारा है, तो कभी उसे जीवन संग्राम में जूझने का दृढ़ संकल्प और आत्मोत्सर्ग की प्रेरणा भी दी है। यही कारण है कि भारतीय समाज में नारी की स्थिति युगीन आदर्शों और जीवन मूल्यों के साथ–साथ परिवर्तित होती रही है।

मैत्रोयी पुष्पा के उपन्यासों के विवेचन–विश्लेषण से हमें सहज निष्कर्ष प्राप्त होता है कि वे भी नारी के प्रति विशेष सम्मानजनक और उदार दृष्टि रखती है। मैत्रोयी जी शोषित–उत्पीड़ित नारी वर्ग की प्रतिनिधि उपन्यासकार है। उन्होंने अपने साहित्य में नारी जीवन की विषमताओं, उसके मानसिक और शारीरिक संत्रास का भावात्मक मनोवैज्ञानिक एवं मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। मैत्रेयी जी ने अपने उपन्यासों में अनेक नारी पात्रों का सृजन किया है। इनमें से अधिकांश आधुनिक नारियाँ हैं। हमारे देश का जो स्वतंत्रता का इतिहास रचा गया, उसकी सपफलता के मूल में पुरुषों के अतिरिक्त नारियों की भी निर्णायक भूमिका रही है।

मैत्रेयी पुष्पा जी एक प्रसिद्ध लेखिका है। उन्होंने अपने उपन्यासों में बुंदेलखण्ड और विंध्य अंचल की समस्याओं–विशेषकर वहाँ के समाज में व्याप्त नारी जीवन की समस्याओं से ही अपने कथ्य का ताना–बाना बुना है। उन्होंने सामाजिक कुरीतियों पर तीखे प्रहार कर कतिपय यथार्थ और युगानुरूप सार्थक समाधान प्रस्तुत किये है। वैसे तो उनके उपन्यासों का फलक बहुत विस्तृत है जिसमें वे समाज की वैयक्तिक, सामूहिक, ग्रामीण, नागरिक, राजनीतिक एवं आर्थिक सभी प्रकार की समस्याओं से सीधे टकराते हुए कोई न कोई तर्कसंगत हल खोजने के लिए सक्रिय है, लेकिन उनकी दृष्टि युग–युग से उपेक्षित, पीड़ित व शोषित भारतीय नारी की उन समस्याओं पर ही पुनः आकर टिक जाती है, जिनके कारण भारतीय समाज आज भी पिछड़ा हुआ है।

मैत्रेयी जी की दृष्टि में नारी जीवन के अभिशप्त होने का मूल कारण यही है कि आज भी नारी पूर्णरूप से आत्मनिर्भर नहीं है और जब तक वह इस धरातल पर स्वावलम्बी नहीं होगी तब तक उसकी यातनाओं का अंत नहीं होगा। अपने इसी दृष्टिकोण को आधार बनाकर मैत्रेयी जी ने कस्तूरी, मंदा, कदमबाई, डॉ. आभा, डॉ. नेहा जैसी नारी पात्रों का गठन किया है जो अपने बुद्धि कौशल से अपनी कठिन परिस्थितियों तथा अधिक दुर्बलताओं को दूर करने के लिए प्रयत्नशील है। आज की नारी पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलना चाहती है। वह हर क्षेत्र में पुरुष की बराबरी कर रही है। अब लड़के–लड़की में कोई भेद नहीं है। सच पूछा जाये तो आज के युग में पुत्र की अपेक्षा पुत्री अपने माता–पिता के प्रति कर्त्तव्य पालन में अधिक जागरूक है। सुख–दुःख में बेटे की अपेक्षा बेटी ही अपने माता–पिता की सेवा में अधिक तत्पर रहती है। वह परिवार में अपना दायित्व पुरुषों की भाँति समझती है।

"माता–पिता की चिन्ता करने वाली डॉ. आभा का क्या हाल हुआ? विशाल अपनी पत्नी के साथ अमेरिका गया था, एयर–पोर्ट पर उसने विशाल से कहा था–जा भइया लड़की की तरह विदा हो जा। मुझे छोड़े जा रहे हैं न यहाँ लड़के की तरह। डोंट वरी, आए एम हियर। आय एम ऑलवेस विद माय पेरेंटस मैं हमेशा अपने माता–पिता के साथ हूँ[5] लेखिका के अनुसार चाँदी के आठ सौ सिक्कों पर तुलने वाली कस्तूरी वैधव्य की यातना से छुटकारा पाने के लिए, पढ़–लिखकर नौकरी करने का जो रास्ता अपनाती है, उससे क्या मर्द–समाज के चौखटों से मुक्ति मिली? नौकरी की बरकरारी और तरक्की के लिए माँ को यदि मर्दों का ही कृपाकांक्षी होना है तो मैत्रेयी क्यों करे नौकरी? यही वे परिस्थितियाँ है जिसमें वह नौकरी नहीं शादी में अपनी मुक्ति का रास्ता तलाशती है। यही स्त्री–मुक्ति का वह प्रति–विमर्श है जो सिद्धान्तों से गढ़ा न होकर पारम्परिक भारतीय समाज की उन सच्चाईयों में कढ़ा है। जहाँ आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होकर भी कामकाजी स्त्रियों की कोई पहचान नहीं है इस समाज में वे पुरुष तो क्या औरत भी नहीं, रांड है, विधवा है, बस। पुरुषों जैसे काम करने से पुरुषों जैसी नहीं मान ली जाती स्त्री। सामाजिक कार्यों के चलते उसे किसी पुरुष की जरूरत होती है, भले ही वह पाँच या दो साल का हो।[6]

नारी मनुष्य को मनुष्य बने रहने के लिए प्रेरित करती है। नारी त्याग, दया, करुणा, ममता, उत्सर्ग और स्नेह की प्रतिमूर्ति होती है। संतान के लिए उसके हृदय में कोमल भावनाएँ निहित रहा करती हैं। भारतीय मनीषियों ने माँ के रूप में नारी को भगवान से भी महान बतलाया है। वह अपनी संतान के लिए बड़े से बड़ा दुःख

उठाने को भी तत्पर रहती है। नारी के इस वन्दनीय और पूज्य रूप का शब्दचित्र हमारी लेखिका ने अल्मा कबूतरी उपन्यास में इस प्रकार अंकित किया है। जब राणा पर कुत्ता हमला कर देता है तब घायल पुत्र को देखकर माँ की क्या स्थिति होती है वह देखिए–

"जो घाव भर गए हैं, फिर से उधेड़ दे कोई, सहन नहीं कर पाएगी वह। उससे राणा की मौत सहन नहीं हो सकती। होती तो सुई खरीदने के लिए चोरी पर क्यों उतर आती? अगर गहने उतारते समय लड़की शोर मचाती तो वह हत्या करने से भी गुरेज न करती। कज्जा की बेटी का गला दबाकर सोच लेती–मेरे राणा पर कूकर छोड़ने वाली बिरादरी की संतान का यही हश्र होना चाहिए।"[7]

नारी सदैव अपने पुत्र का हित चाहती है उसके लिए मंगल कामना किया करती है, उनकी पीड़ा से स्वयं पीड़ित हो जाती है और उसका दुःख दर्द दूर करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहती है।

भारतीय समाज में नारी आरम्भ से ही भावात्मक उपेक्षा, शोषण, अत्याचार और उत्पीड़न का शिकार होती रही है। उसे कभी शारीरिक यातनाएँ सहनी पड़ती हैं तो कभी मानसिक पीड़ाएँ। कहीं वह अपनी ही ससुराल में पति, सास–ससुर आदि से प्राप्त शारीरिक यातना और मानसिक यंत्रणाओं को भोगती है तो कहीं समाज के दरिन्दे उसे अपनी हवस का शिकार बना देते हैं। समाज में जो नियम बनाये गये हैं, उनमें भी पुरुष को ही प्रधानता दी गई है। पुरुष के बिना नारी के व्यक्तित्व की पहचान समाज में अधूरी मानी जाती है। यहाँ नारी तभी पूर्ण मानी जाती है, जब वह संतान को जन्म दे देती है। यदि नारी सन्तानोत्पत्ति न कर सके तो उस स्थिति में पुरुष को दूसरा और तीसरा विवाह करने की छूट मिल जाती है। समाज में पुरुष ने सदैव नारी के व्यक्तित्व की, उसकी भावनाओं, कामनाओं, इच्छाओं की उपेक्षा की है। उससे अपनी बात मनवाने के लिए उसे अपनी इच्छानुसार चलाने का प्रयत्न किया है। इस कारण नारी के व्यक्तित्व और आत्मसम्मान को गहरा आघात लगा है। इतना ही नहीं कभी–कभी तो पुरुष अपनी पत्नी से ऐसी बातें सुनने को भी तैयार नहीं होता जो उसके मनोनुकूल न हो। रंजीत, यशपाल ऐसे ही पुरुष पात्र हैं।

मैत्रेयी जी का मानना है कि "सारंग की त्रासदी उन सारी स्त्रियों की त्रासदी है जो अपनी जरूरत से ज्यादा ही पारदर्शी, पर उग्र पतियों से स्नेह तो करती है, पर लाख चाहकर भी उन्हें अपने सपनों के पूर्ण पुरुष का दर्जा नहीं दे पाती। उनके पति आजीवन उनके लिए एक उद्दण्ड जिद्दी बच्चा ही बने रह जाते हैं। जिन्हें स्नेह–सुरक्षा तो दी जा सकती है, पर जिनके लिए मन ऐसे नहीं उमड़ता कि सर्वस्व समर्पित करने की सहज साध जाग जाए। मन को समझा–बुझाकर कर्त्तव्य भाव से सम्बन्ध निभा देना एक बात है और प्रेम में पड़ना कोई और ही बात। विभोर होने की स्थिति सबके साथ बन ही नहीं पाती, वह वहीं बनती है जहाँ हृदय–बुद्धि में सामंजस्य हो यानी तत्त्व की एकता। अलग–अलग दोनों तत्त्व निराले हो सकते हैं, पर यौगिक भाव में उनका विलय हर स्थिति में संभव तो नहीं होता। यह आधारभूत तथ्य 'चाक' में कुछ इस प्रकार स्थापित होता है कि क्षणविशेष में, किसी ममत्व भरे आवेग के अंतर्गत विवाहित नायिका का अपने बेटे के आदर्शवादी शिक्षक के साथ स्पष्ट दैहिक संसर्ग भी अस्वाभाविक और असंगत नहीं लगता।"[8]

हिन्दी के आधुनिक उपन्यासकार नारी के प्रति सदैव सजग रहने वाली छुई–मुई नैतिकता के बंधन से अपने को मुक्त कर चुके हैं। परन्तु स्वस्थ काम चेतना के आधार पर विकासशील व्यक्तित्व की विराट सम्भावनाओं को व्यक्त करने में वे असमर्थ रहे हैं। आज के उपन्यासकार की दृष्टि नारी की अंगभंगिमाओं में उलझकर रह गयी है और वह समाज के द्वन्द्वात्मक विकास की मूल शक्तियों से अपरिचित ही रह गया। काम चेतना मनुष्य की अनेक विकासशील और सृजनशील प्रवृत्तियों के रूप में व्यक्त होती है। मैत्रेयी के पात्र जनजीवन के प्रतिनिधि नहीं हैं। वे उस वर्ग के लोग हैं जिनके लिए सैक्स और आत्मपीड़ा की समस्यायें प्रधान हैं।

वीरेन्द्र यादव के अनुसार–"मैत्रेयी पुष्पा के लेखकीय व्यक्तित्व का सर्वाधिक सकारात्मक पहलू यह है कि वे जिस स्त्री संस्कार को अपने लेखन में केन्द्रीयता प्रदान करती है। वह कमोबेश उनके अपने अनुभव संसार में शामिल रहा है। कभी–कभी अविश्वासनीय व अतार्किक कहे जाने का जोखिम उठाकर भी वे जिन स्त्री पात्रों को रचती रही हैं, वे जिस खाद–बीज से निर्मित हुए हैं, उसका पता हमें उनके इस आत्मकथात्मक उपन्यास से मिलता है।.....महिला लेखिकाओं के कथा–साहित्य के 'सैक्स' और 'इनसेस्ट' के प्रसंगों में लेखिका के अंतरंग जीवन के सूत्र तलाशने वाले पुरुष–रतिकों के लिए मैत्रेयी पुष्पा अपने आत्मकथा में कुछ भी गोपन नहीं छोड़तीं। यहाँ तक कि विवाह की सुख सेज से 'साफ–सुथरी उठने के कारण' पति के मन में अपने कौमार्य को लेकर उठे संदेह को भी वे नारी विमर्श का मुद्दा बनाती हैं।[9]

सतमासी बेटी के जन्मने बेटी के पितृत्व को लेकर पति के मन में उठे संशय पर मैत्रेयी की टिप्पणी है कि 'अन्य पतियों की तरह मेरे पति भी अपने वंश और पीढ़ियों के प्रति खुद को सत्यानाश का अपराधी मान रहे हैं। इस समूचे मुद्दे पर तर्क–वितर्क करते हुए मैत्रेयी का स्त्री–पक्ष की ओर से प्रति प्रश्न है 'जो पुरुष स्वयं इस बच्ची का पिता होने में हिचक मान रहा है, उसे वह पति भी कैसे माने?"[10]

स्वीकार करना होगा कि अधिक संश्लिष्ट अर्थों में मैत्रेयी पुष्पा का यह आत्मकथ्य 'बोल्ड लेखन' की बानगी मात्र न होकर स्त्री विमर्श से जुड़े मुद्दों की बोल्डनेस का सवाल है। इस बोल्डनेस की धार कभी पति पर वार करती है, तो कभी माँ को ही कटघरे में खड़ा करती है।[11]

"इदन्नमम, चाक की भाँति, दुनिया की शायद ही कोई ईमानदार नारी कथा हो जो अन्ततः सैक्स कथा न हो, जिस समाज में हजारों सालों से नारी को सिर्फ सैक्स बनाकर रखा गया हो, वहाँ सैक्स–विहीन नारी कथा या तो हवाई आदर्शवाद है या जान बूझकर गढ़ा गया झूठ। मैत्रेयी की कथा नारियाँ अपनी पूरी शारीरिकता के साथ जीने के संकल्प को ही अपना कथ्य बनाती हैं। उनकी गोमा, शीलो, मन्दा, सारंग, कुसुमा, अल्मा आदि नारी पात्र जिजीविषा की ऐसी दबंग अभिव्यक्तियाँ हैं जहाँ श्लील, अश्लील, नैतिक, अनैतिक की धारणाएँ सहज ही कैचुली की तरह उतर जाती हैं।"[12]

मैत्रेयी जी की नारी पात्राएँ परम्परागत विचारधाराओं और रूढ़िवादिताओं का खंडन कर रही हैं। मैत्रेयी की नारी पात्राएँ अदम्य साहस का प्रतीक है। विषम परिस्थितियों से जूझना, जीवन के थपेड़े झेलना परन्तु पराजय स्वीकार न करना इनका विशेष गुण है। संघर्ष करते हुए अपनी स्थिति को उत्तमता की ओर अग्रसर करने का उनका निरन्तर प्रयत्न रहा है। मैत्रेयी जी नारी सम्बन्धी धारणा को आधुनिक परिवेश में स्वीकृत करती हैं। उनके नारी सम्बन्धी विचार परम्परागत न होकर आधुनिक हैं। प्रगतिशील नारी हर प्रकार की घुटन को तोड़कर मुक्त हो जाना चाहती है। पराधीनता के संबंध में प्राण कैसे छटपटाते हैं इसका मनोवैज्ञानिक यथार्थ चित्रण मैत्रेयी ने अपने साहित्य में किया है।

मैत्रेयी जी ने अपने उपनस झूलानट के माध्यम से पुरुष की क्रूरताओं, स्त्री की मजबूरियों उन मजबूरियों के बीच अपने अस्तित्व रक्षण के लिए जगह बनाती नारी की स्थितियों को व्यक्त किया है। शीलो एक हद तक अपनी चालबाजियों के लिए बेगुनाह ठहराई जा

सकती है क्योंकि उसकी लड़ाई पुरुष समाज के विरुद्ध है। "मैत्रेयी पुष्पा जन पितृसत्तात्मक व्यवस्था की अमानवीयता के खिलाफ रेशम के बहाने विधवा के मानवीय अधिकारों की इकतरफा असफल लड़ाई की एक छोटी–सी झलक देकर सारंग द्वारा उसे व्यापक स्तर पर एक निर्णयात्मक अंजाम देने की प्रक्रिया करती है तो एक साथ संतोष और आश्वस्ति की अनुभूति होती है।"[13]

मैत्रेयी जी ने अपने उपन्यास साहित्य के द्वारा नारी को जीवन पथ पर अग्रसर होने की महान प्रेरणा दी है। यदि नारी प्रगति पथ का अवलंबन नहीं करेगी तो पूरे समाज की प्रगति अवरुद्ध हो जायेगी और इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए रुढ़ियों के जर्जर भवन पर निरन्तर प्रहार करना होगा। यह विचार मैत्रेयी को सदैव प्रेरित करता रहा है। मैत्रेयी जी ने नारी स्वतंत्रता का प्रबल समर्थन करते हुए भी उसकी उच्छृंखलता का कहीं अनुमोदन नहीं किया।

मैत्रेयी पुष्पा के अनुसार, "इदन्नमम की मंदाकिनी वास्तविक अर्थों में एक जुझारू युवती है। जो केवल परिवार और समाज द्वारा अपने लिए निर्मित बंधनों को ही नहीं तोड़ती वरन् शोषण के विरुद्ध भी तनकर खड़ी हो जाती है। मंदा ऐसी नारी है, फ्जो स्त्री यातना को सहते हुए शोषितों एवं वंचितों की पीड़ा से एकात्म हो जाती है। घर, परिवार की देहरी लांघकर वह समाज की उस धुरी पर खड़ी होती है, जहाँ स्त्री–चेतना व दलित चेतना एकाकार होकर जनतंत्र और विकास के सवालों से टकराने लगती है। लेकिन मंदा की यह भूमिका थोपी हुई क्रांतिकारी चेतना न होकर भारतीय समाज की नई दिशाओं को तलाशती एक ऐसी स्वतः स्फूर्त चेतना है, जो मेघा पाटकर, बाबा आम्टे, बाबा हजारे और बी.डी. शर्मा के संघर्षों का स्मरण कराती है।"[14] वस्तुतः यह उपन्यास औरत होने की लड़ाई का उपन्यास है। प्रेम, कुसुमा, सगुना आदि नारी पात्रों में साहस और निरीहता का अद्भुत संयोग है। तीनों पात्र इस कड़वी सच्चाई को प्रस्तुत करते हैं कि समाज द्वारा निर्धारित मानदण्डों के विरोध में साहसपूर्ण विकल्प का चयन उनके लिए अंततः कारुणिक और त्रासद अंत का चयन है। इस प्रकार हम देखते हैं कि उनके नारी पात्र अपने कर्त्तव्य पथ पर सतत् गतिशील रहते हैं और पाठक को भी गतिशील रहने की प्रेरणा देते हैं। मैत्रेयी जी ने प्राचीन नैतिकता की मान्यता को स्वीकार नहीं किया है। क्योंकि नैतिकता कोई ऐसा वस्त्र नहीं है, जो शरीर से चिपट कर रह जाये। नैतिकता के मापदण्ड युग परिवेश में परिवर्तित होते रहते हैं। स्त्री की स्वतंत्रता को नैतिक पराधीनता की बेड़ियों से जकड़ा नहीं जा सकता नैतिकता के पुराने मापदंड खंडित होने ही चाहिए। ऐसा अन्तः स्वर मैत्रेयी जी की नारी भावना से सबल रूप में ध्वनित हो रहा है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मैत्रेयी जी की नारी भावना बौद्धिक यथार्थ संवेद्य और मानवतावाद के मूल आदर्शों का पोषण कर रही है।

स्वामी विवेकानंनद का यह दृढ़ विश्वास था कि जो देश और जाति स्त्री जाति की प्रतिष्ठा नहीं करती वह कदापि उन्नतिशील नहीं हो सकती उनका कथन था कि "भारत में स्त्री जीवन के आदर्श का आरम्भ और अन्त मातृत्व में ही होता है। नारी के नारीत्व का पूर्ण विकास होने पर ही स्त्री को एक उच्च तथा आदरणीय स्थान प्राप्त हो सकता है। क्योंकि विश्व के समस्त देवी गुण और शक्तियाँ उस गृह समाज तथा राष्ट्र में विद्यमान रहते हैं। जहाँ नारियों की पूजा होती है।"[15]

आज बदलते हुए इस परिवेश में नारी स्वयं जागृत हो गयी है। अपने भविष्य के सम्बन्ध में वह सोचने लगी है। वह जानती है कि किस जगह पर उसके साथ अत्याचार, घृणा एव उपेक्षिता का व्यवहार किया जा रहा है। वह प्रचीन संस्कारों में जीना नहीं चाहती है क्योंकि वहाँ पर दमघोटू एवं नाटकीय जिन्दगी जीने को मिलती है। ऐसी अवस्था में पुरुष केवल उसे भोग की वस्तु समझकर उसके साथ व्यवहार करता है। वर्तमान स्थिति में नारी के जीवन मूल्यों के दृष्टिकोण में इतना अधिक परिवर्तन हो चुका है कि वह अपने अस्तित्व को कहीं पर भी पुरुष के आगे छोटा होते हुए नहीं देख सकती। क्योंकि वह भी पुरुष के समान ही प्रत्येक स्थान पर किसी भी कार्य को करने के लिए तैयार है।

सामाजिक यथार्थ परिस्थितियों में नारी जीवन में जो समस्याएँ पनप रही हैं, उनके मूल में वह आत्महीनता का शिकार है। क्योंकि जब पुरुष वर्ग नारी की प्रत्येक क्षेत्र में अपने से तुलना करता हुआ उसकी उपेक्षा करता है, तभी नारी मन हीन भावना से भर जाता है। नारी को इस स्थिति से निकालने के लिए समाज को ऐसी व्यवस्था करनी होगी जिसके सहारे चलकर नारी अपनी प्रतिभा से पुरुष को चकित कर सके। डॉ. रोहिणी अग्रवाल ने अपने लेख के द्वारा मैत्रेयी के नारी चिंतन को प्रस्तुत किया है। क्या चमड़ी के नीचे सारे पुरुष और स्त्रियाँ एक से हैं? "पराश्रित से बंधकर आत्मनिर्भर कैसे हो सकती हो?" आभा दी नेहा से नहीं पूछती, कड़ा सवाल उठाकर मैत्रेयी पुष्पा पितृसत्तात्मक व्यवस्था की पुनः निरीक्षण करने की माँग करती हैं। पितृसत्तात्मक व्यवस्था जो स्वयं छवियों और वर्जनाओं में इस कदर आबद्ध हो गई है कि स्त्री और पुरुष दोनों की स्वतंत्रता और अस्मिता का आखेट किए जा रही है, जो अपनी परिधि में घूमते–घूमते इतना घिस गई है कि पुरुष वर्चस्व की रक्षा के उद्योग में परिवार एवं विवाह जैसी संस्थाओं को दरकने से नहीं बचा पा रही है।"[16] फ्जो पुरुष को ऊँचाइयाँ देकर मार डालती है और स्त्री को अंधेरी अज्ञात निचाइयाँ।"[17] जो भरी पूरी स्त्री शख्सियत को महज एक कोख में रिड्यूस कर देती है–"बहू का मतलब है वंश बढ़ाने वाली माता।"[18] जो मानवीय मूल्यों पर स्त्रियोचित गुणों का लेबल चस्पा कर स्त्री से फ्लोरेंस नाइटेंगेल और मदर टेरेसा बनने की माँग करती है और पुरुष की अपने परिवार से नाभि नाल भी टूटने नहीं देती। यदि नेहा को अजय अपना पति न लगकर "खालिस अपने पापा का बेटा–शरण आई सेंटर का उत्तराधिकारी।"[19] लगता है तो उस कसैली प्रतीति में आभा दी की अतृप्ति भी जुड़ी है। डॉ. शैल रस्तोगी के विचारानुसार फ्नारी का जीवन भी समाज में कम संघर्षशील नहीं रहा। उत्थान–पतन के कितने दौरों से गुजरती हुई नारी आज वर्तमान में अपनी स्थिति तक पहुंच सकी है। साहित्यकार की भावना में प्रारम्भ से ही नारी दो परस्पर विरोधी रूपों में विद्यमान रही है। एक चिन्तन धारा के अनुसार नारी के गरिमामय उदात्त रूप का प्रस्तुतीकरण हुआ और दूसरी के अनुसार नारी के अवगुणों का पूरा लेखा–जोखा प्रस्तुत करके उसे निन्दित किया गया। हिन्दी उपन्यास भी इसका अपवाद नहीं है। हिन्दी उपन्यासों में नारी को कथानक का केन्द्र बनाकर उसके विवधि रूपों का उद्घाटन समय–समय पर किया जाता रहा है।"[20]

मैत्रेयी जी के उपन्यासों में नारी के प्रति संवेदना सबसे अधिक व्यापक स्तर पर पाई जाती है। मैत्रेयी जी के अतिरिक्त कोई भी लेखक नारी जीवन की विषम जटिलताओं विषमताओं को व्यक्त करने में समर्थ नहीं रहा है। मैत्रेयी जी ने युग जीवन के संघर्षो को व्यक्त करने के साथ–साथ आज के खोखले और सभ्य समाज का चित्रण भी बहुत ही स्वाभाविक रूप में किया है। नारी स्वतंत्रता की प्रबल समर्थक मैत्रेयी को नारी सदैव दयनीय और प्रताड़ित ही दृष्टिगोचर होती है। चाहे वह किसी भी वर्ग विशेष से सम्बन्धित हो, इसीलिए मैत्रेयी जी ने अपने सभी उपन्यासों में समाज से प्रताड़ित नारी को ही प्रधानता और संवेदना प्रदान की है। उन्होंने अपने सम्पूर्ण उपन्यासों में नारी स्वतंत्रता हेतु रूढ़िगत संस्कारों और मान्यताओं का खुलकर विरोध किया है। मैत्रेयी जी ने प्रत्येक वर्ग

विशेष की नारी समस्या को लेकर उसके यथार्थ रूप को समाज के सामने प्रस्तुत किया है। मैत्रेयी पुष्पा के नारी विषयक दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति 'कस्तूरी कुंडल बसै' उपन्यास में स्पष्ट हो जाती है। स्त्री की सामाजिक हैसियत की पहचान मैत्रेयी पुष्पा अपने उसी परिवेश से करती है, लड़की की नियति यहाँ सब कहीं निशि और शकुन जैसी ही है। निशि तीन बहनें हैं बाप की सामाजिक हैसियत और आर्थिक सीमाओं के कारण उसका विवाह बेहोश करके एक दुहाजू से किया जाता है बाद में वह आत्महत्या कर लेती है। अपने संभावित पति को ठहराने के लिए मैत्रेयी जो कमरा तय करती है ऐन वक्त पर उसे नहीं मिलता। फिर अपने औरत होने के रिश्ते से शकुन मैत्रेयी को प्यार से 'बिन्ना' कहकर जो कुछ बताती–सुनाती है वह सब औरत की जिंदगी का एक भयावह सच है। आदमी ही अपनी औरतों को वहाँ लाते हैं और उनकी करिहाई के दम पर क्लीनर और कंडक्टर बनते हैं। औरतों के बेहिसाब दुःखों के आगे माँ का घूंघट–पर्दे का विरोध या शिक्षा के पक्ष में खड़ा होना उसे बहुत कम लगता है। इस पर न घी के चिराग जलाए जा सकते हैं, न ही इतराया जा सकता है।[21]

मैत्रेयी की धारणा है कि नारी की दयनीय स्थिति का मूल कारण उनका आर्थिक दृष्टि से पुरुष पर निर्भर रहना है, जब तक नारी आर्थिक बंदीगृह से मुक्त नहीं होती तब तक नारी स्वतंत्रता की रक्षा करना व्यर्थ है। इसीलिए मैत्रेयी की नारी पात्राएँ आर्थिक आत्म निर्भरता के लिए संघर्षरत कही जा सकती है। मैत्रेयी जी नारी स्वतंत्रता की प्रबल समर्थक रही हैं। उनका विचार है कि नारियों का शोषण नहीं होना चाहिए घर और बाहर की नारियों को स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। पुरुषों को और नारी को स्वतंत्र स्तर पर प्रतिष्ठित करते हुए उनके व्यक्तित्व के विकास का यज्ञ पूर्ण करना चाहिए।

निष्कर्ष

मैत्रेयी पुष्पा जी के समग्र उपन्यासों पर दृष्टिपात करने पर यह बात स्पष्ट रूप से सामने आती है कि उनकी प्रवृत्ति नारी पात्रों के चित्रांकन की ओर विशेष उन्मुख रही है। उनके अधिकांश उपन्यासों में स्त्री पात्राों की प्रधानता रही है। यहाँ तक कि कुछ उपन्यासों का नामकरण भी नारी पात्रों के नाम पर किया गया है जैसे–अल्मा कबूतरी, कस्तूरी कुंडल बसै। मैत्रेयी के प्रत्येक उपन्यास में एक न एक ऐसा नारी पात्र जरूर है जो समस्त उपन्यास की कथा का मेरूदण्ड कही जा सकती है।

अतः निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि नारी चरित्रांकन में मैत्रेयी को सर्वाधिक सफलता मिली है। इन्होंने अपने हृदय की कोमलतम कल्पनाओं की प्रतिच्छाया को नारी के अन्तर में देखा। पुरुष युद्ध, वीरता, पौरुष एवं कर्म के प्रतीक है, तो नारी त्याग, सेवा, भावुकता, कोमलता एवं आत्माभिमान की साक्षात् मूर्ति है। मैत्रेयी ने अपने उपन्यासों में हर प्रकार के स्वभाव वाली नारियों को चित्रित किया है। इनके उपन्यासों में नारी पात्रों की ही प्रधानता है। उन्होंने नारी जगत की कई समस्याओं को अपने उपन्यासों में उजागर किया है। वे नारी के व्यक्तित्व को संकुचित दृष्टि से नही देखती, सदियों से नारी, पुरुष की दासी के रूप में पीड़ित है, जिससे उसका आत्मसम्मान लुप्त सा हो गया है। उनके अनुसार नारी में भी आत्मसम्मान की वैसी ही चिंगारी होती है जैसी पुरुष में होती है।

संदर्भ सूची

1. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ. 110
2. जयशंकर प्रसाद, कामायनी–(लज्जा सर्ग)
3. मैथिलीशरण गुप्त, यशोधरा, पृ. 47
4. महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियाँ, पृ. 10–11
5. मैत्रेयी पुष्पा, विजन, पृ. 116
6. वही, कस्तूरी कुण्डल बसै, पृ. 72
7. मैत्रेयी पुष्पा, अल्मा कबूतरी, पृ. 98
8. मैत्रेयी पुष्पा, हंस, जनवरी 1999, पृ. 71
9. हंस, जुलाई, 1998, पृ. 10
10. वीरेन्द्र यादव, बेटी के दर्पण में माँ–(लेख), हंस–अगस्त 2002, पृ. 88
11. मैत्रेयी पुष्पा, कस्तूरी कुंडल बसै, पृ. 314
12. हंस, अगस्त 2000, पृ. 90
13. हंस, मार्च 2001, पृ. 175
14. साहित्य वार्षिकी, 1997, पृ. 29
15. विवेकानन्द, भारतीय नारी, पृ. 23–26
16. रोहिणी अग्रवाल, विजन : सिक्स बाई सिक्स अंतर्दृष्टि–(लेख), हंस, अप्रैल 2002, पृ. 86
17. मैत्रेयी पुष्पा, विजन, पृ. 116
18. वही, पृ. 132
19. वही, पृ. 22
20. डॉ. शैल रस्तोगी, हिन्दी उपन्यासों में नारी, आमुख पृष्ठ से उद्धृत।
21. मैत्रेयी पुष्पा, कस्तूरी कुंडल बसै, पृ. 199–200